संक्षिप्त
श्रीकूर्मरामायण

विवेश तद् वेदसारं स्थानं वै परमेष्ठिनः।
भानोः स मण्डलं शुभ्रं ततो यातो महेश्वरम्॥ ७४॥

कालात्मक परमेष्ठीके उस वेदसार नामक स्थानको प्राप्त किया जो सूर्यका शुभ्र मण्डल है। तदनन्तर वे महेश्वरको प्राप्त हुए॥ ७१—७४॥

यः पठेच्छृणुयाद् वापि राज्ञश्चरितमुत्तमम्।
सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्रह्मलोके महीयते॥ ७५॥

राजाके इस उत्तम चरितको जो पढ़ता है अथवा सुनता है, वह सभी पापोंसे मुक्त होकर ब्रह्मलोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त करता है॥ ७५॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायां पूर्वविभागे एकोनविंशोऽध्यायः॥ १९॥

इस प्रकार छः हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके पूर्वविभागमें उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ १९॥

बीसवाँ अध्याय

इक्ष्वाकु-वंश-वर्णनके प्रसंगमें श्रीराम-कथाका प्रतिपादन, श्रीरामद्वारा सेतु-बन्धन और रामेश्वर-लिंगकी स्थापना, शंकर-पार्वतीका प्रकट होकर रामेश्वर-लिंगके माहात्म्यको बतलाना, श्रीरामको लव-कुश-पुत्रोंकी प्राप्ति तथा इक्ष्वाकु-वंशके अन्तिम राजाओंका वंश-वर्णन

सूत उवाच

त्रिधन्वा राजपुत्रस्तु धर्मेणापालयन्महीम्।
तस्य पुत्रोऽभवद् विद्वांस्त्रय्यारुण इति स्मृतः॥ १॥
तस्य सत्यव्रतो नाम कुमारोऽभून्महाबलः।
भार्या सत्यधना नाम हरिश्चन्द्रमजीजनत्॥ २॥
हरिश्चन्द्रस्य पुत्रोऽभूद् रोहितो नाम वीर्यवान्।
हरितो रोहितस्याथ धुन्धुस्तस्य सुतोऽभवत्॥ ३॥
विजयश्च सुदेवश्च धुन्धुपुत्रौ बभूवतुः।
विजयस्याभवत् पुत्रः कारुको नाम वीर्यवान्॥ ४॥
कारुकस्य वृकः पुत्रस्तस्माद् बाहुरजायत।
सगरस्तस्य पुत्रोऽभूद् राजा परमधार्मिकः॥ ५॥
द्वे भार्ये सगरस्यापि प्रभा भानुमती तथा।
ताभ्यामाराधितः प्रादादौर्वाग्निर्वरमुत्तमम्॥ ६॥

सूतजी बोले—राजपुत्र त्रिधन्वाने पृथ्वीका धर्मपूर्वक पालन किया। उसका एक विद्वान् पुत्र हुआ जो त्रय्यारुण नामसे प्रसिद्ध हुआ। उसको (त्रय्यारुणको) सत्यव्रत नामका महान् बलवान् पुत्र हुआ। सत्यधना नामक उसकी पत्नीने हरिश्चन्द्रको जन्म दिया। हरिश्चन्द्रको रोहित नामवाला पराक्रमी पुत्र हुआ। रोहितका हरित और उसका पुत्र धुन्धु हुआ। धुन्धुके विजय और सुदेव—ये दो पुत्र हुए। विजयका कारुक नामका वीर पुत्र हुआ। कारुकका पुत्र वृक और उससे बाहु (नामक पुत्र) उत्पन्न हुआ। उस बाहुका पुत्र सगर हुआ जो परम धार्मिक था। सगरकी दो पत्नियाँ थीं—प्रभा और भानुमती। और्वाग्निने उन दोनोंसे पूजित होकर उन्हें श्रेष्ठ वर प्रदान किया॥ १—६॥

एकं भानुमती पुत्रमगृह्णादसमञ्जसम्।
प्रभा षष्टिसहस्रं तु पुत्राणां जगृहे शुभा॥ ७॥
असमञ्जस्य तनयो ह्यंशुमान् नाम पार्थिवः।
तस्य पुत्रो दिलीपस्तु दिलीपात् तु भगीरथः॥ ८॥
येन भागीरथी गङ्गा तपः कृत्वावतारिता।
प्रसादाद् देवदेवस्य महादेवस्य धीमतः॥ ९॥

(वरके फलस्वरूप) भानुमतीने असमञ्जस नामक पुत्रको ग्रहण किया और कल्याणी प्रभाने साठ हजार पुत्रोंको प्राप्त किया। असमञ्जसके पुत्र अंशुमान् नामक राजा थे, उनके पुत्र दिलीप तथा दिलीपसे भगीरथ हुए, जिन्होंने तपस्या करके देवाधिदेव धीमान् महादेवकी कृपासे भागीरथी गङ्गाको (पृथ्वीपर) अवतारित किया॥ ७—९॥

भगीरथस्य तपसा देवः प्रीतमना हरः।
बभार शिरसा गङ्गां सोमान्ते सोमभूषणः॥ १०॥

भगीरथकी तपस्यासे प्रसन्न हुए मनवाले चन्द्रभूषण देव हरने अपने सिरपर स्थित चन्द्रमाके अग्रभागमें गङ्गाको धारण किया॥ १०॥

भगीरथसुतश्चापि श्रुतो नाम बभूव ह।
नाभागस्तस्य दायादः सिन्धुद्वीपस्ततोऽभवत्॥ ११॥
अयुतायुः सुतस्तस्य ऋतुपर्णस्तु तत्सुतः।
ऋतुपर्णस्य पुत्रोऽभूत् सुदासो नाम धार्मिकः।
सौदासस्तस्य तनयः ख्यातः कल्माषपादकः॥ १२॥
वसिष्ठस्तु महातेजाः क्षेत्रे कल्माषपादके।
अश्मकं जनयामास तमिक्ष्वाकुकुलध्वजम्॥ १३॥

अश्मकस्योत्कलायां तु नकुलो नाम पार्थिवः।
स हि रामभयाद् राजा वनं प्राप सुदुःखितः॥ १४॥

विभ्रत् स नारीकवचं तस्माच्छतरथोऽभवत्।
तस्माद् बिलिबिलिः श्रीमान् वृद्धशर्मा च तत्सुतः॥ १५॥

तस्माद् विश्वसहस्तस्मात् खट्वाङ्ग इति विश्रुतः।
दीर्घबाहुः सुतस्तस्य रघुस्तस्मादजायत॥ १६॥
रघोरजः समुत्पन्नो राजा दशरथस्ततः।
रामो दाशरथिर्वीरो धर्मज्ञो लोकविश्रुतः॥ १७॥

भरतो लक्ष्मणश्चैव शत्रुघ्नश्च महाबलः।
सर्वे शक्रसमा युद्धे विष्णुशक्तिसमन्विताः।
जज्ञे रावणनाशार्थं विष्णुरंशेन विश्वकृत्॥ १८॥
रामस्य सुभगा भार्या जनकस्यात्मजा शुभा।
सीता त्रिलोकविख्याता शीलौदार्यगुणान्विता॥ १९॥

तपसा तोषिता देवी जनकेन गिरीन्द्रजा।
प्रायच्छज्जानकीं सीतां राममेवाश्रिता पतिम्॥ २०॥
प्रीतश्च भगवानीशस्त्रिशूली नीललोहितः।
प्रददौ शत्रुनाशार्थं जनकायाद्भुतं धनुः॥ २१॥

स राजा जनको विद्वान् दातुकामः सुतामिमाम्।
अघोषयदमित्रघ्नो लोकेऽस्मिन् द्विजपुंगवाः॥ २२॥

इदं धनुः समादातुं यः शक्नोति जगत्त्रये।
देवो वा दानवो वापि स सीतां लब्धुमर्हति॥ २३॥

भगीरथका भी श्रुत नामक पुत्र हुआ और उसका पुत्र हुआ नाभाग। उससे सिन्धुद्वीप हुआ। उस सिन्धुद्वीपका पुत्र अयुतायु और उसका पुत्र ऋतुपर्ण हुआ। ऋतुपर्णका सुदास नामका धार्मिक पुत्र हुआ। उसका पुत्र सौदास हुआ जो कल्माषपाद नामसे विख्यात हुआ॥ ११-१२॥

कल्माषपादके क्षेत्रमें महातेजस्वी वसिष्ठने इक्ष्वाकु-वंशके पताकारूप अश्मक नामक पुत्रको उत्पन्न कराया। अश्मककी उत्कला नामक पत्नीसे नकुल नामक राजा उत्पन्न हुआ। वह राजा परशुरामके भयसे अत्यन्त दुःखित होकर वन चला गया। उसने 'नारी-कवच'* धारण कर रखा था। उस (नकुल)-से शतरथ हुआ और उससे श्रीमान् बिलिबिलि उत्पन्न हुआ। उसका पुत्र वृद्धशर्मा था। उस वृद्धशर्मासे विश्वसह और उसका पुत्र खट्वाङ्ग नामसे विख्यात हुआ। उसका पुत्र दीर्घबाहु और उससे रघु उत्पन्न हुआ॥ १३—१६॥

रघुका अज उत्पन्न हुआ और उससे राजा दशरथ हुए। दशरथके पुत्र राम वीर, धर्मज्ञ और लोकमें प्रसिद्ध हुए। दशरथके ही पुत्र भरत, लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न भी थे। ये सभी महान् बलशाली, युद्धमें इन्द्रके समान और विष्णुकी शक्तिसे सम्पन्न थे। रावणका विनाश करनेके लिये विश्वकर्ता विष्णु ही इन लोगोंके रूपमें अंशरूपसे प्रकट हुए थे॥ १७-१८॥

रामकी सौभाग्यशालिनी कल्याणी पत्नी जनककी पुत्री सीता थीं। वे शील एवं उदारता आदि गुणोंसे सम्पन्न और तीनों लोकोंमें विख्यात थीं। जनकके द्वारा तपस्यासे संतुष्ट की गयी गिरिराजपुत्री पार्वतीने उन्हें जानकी सीताको प्रदान किया। सीताने रामको ही पति बनाया॥ १९-२०॥

त्रिशूल धारण करनेवाले, नीललोहित भगवान् ईश (शंकर)-ने प्रसन्न होकर शत्रुओंके विनाशके लिये जनकको अद्भुत धनुष प्रदान किया था। श्रेष्ठ द्विजो! उस विद्वान् शत्रुनाशक राजा जनकने इस कन्याका दान करनेकी इच्छासे संसारमें यह घोषणा करवायी कि देवता या दानव जो कोई भी इस धनुषको उठानेमें समर्थ होगा, वह सीताको प्राप्त कर सकता है॥ २१—२३॥

* परशुरामद्वारा पृथ्वीके क्षत्रियशून्य किये जानेके समय स्त्रियोंके मध्य रहकर नकुलने अपनी रक्षा की थी, इसलिये उसे 'नारी-कवच' कहा जाता है।

विज्ञाय रामो बलवान् जनकस्य गृहं प्रभुः।
भञ्जयामास चादाय गत्वासौ लीलयैव हि॥ २४॥

उद्ववाह च तां कन्यां पार्वतीमिव शंकरः।
रामः परमधर्मात्मा सेनामिव च षण्मुखः॥ २५॥

ततो बहुतिथे काले राजा दशरथः स्वयम्।
रामं ज्येष्ठं सुतं वीरं राजानं कर्तुमारभत्॥ २६॥

तस्याथ पत्नी सुभगा कैकेयी चारुभाषिणी।
निवारयामास पतिं प्राह सम्भ्रान्तमानसा॥ २७॥

मत्सुतं भरतं वीरं राजानं कर्तुमर्हसि।
पूर्वमेव वरो यस्माद् दत्तो मे भवता यतः॥ २८॥

स तस्या वचनं श्रुत्वा राजा दुःखितमानसः।
बाढमित्यब्रवीद् वाक्यं तथा रामोऽपि धर्मवित्॥ २९॥

प्रणम्याथ पितुः पादौ लक्ष्मणेन सहाच्युतः।
ययौ वनं सपत्नीकः कृत्वा समयमात्मवान्॥ ३०॥

संवत्सराणां चत्वारि दश चैव महाबलः।
उवास तत्र मतिमान् लक्ष्मणेन सह प्रभुः॥ ३१॥

कदाचिद् वसतोऽरण्ये रावणो नाम राक्षसः।
परिव्राजकवेषेण सीतां हृत्वा ययौ पुरीम्॥ ३२॥

अदृष्ट्वा लक्ष्मणो रामः सीतामाकुलितेन्द्रियौ।
दुःखशोकाभिसंतप्तौ बभूवतुररिंदमौ॥ ३३॥

ततः कदाचित् कपिना सुग्रीवेण द्विजोत्तमाः।
वानराणामभूत् सख्यं रामस्याक्लिष्टकर्मणः॥ ३४॥

सुग्रीवस्यानुगो वीरो हनुमान् नाम वानरः।
वायुपुत्रो महातेजा रामस्यासीत् प्रियः सदा॥ ३५॥

स कृत्वा परमं धैर्यं रामाय कृतनिश्चयः।
आनयिष्यामि तां सीतामित्युक्त्वा विचचार ह॥ ३६॥

महीं सागरपर्यन्तां सीतादर्शनतत्परः।
जगाम रावणपुरीं लङ्कां सागरसंस्थिताम्॥ ३७॥

तत्राथ निर्जने देशे वृक्षमूले शुचिस्मिताम्।
अपश्यदमलां सीतां राक्षसीभिः समावृताम्॥ ३८॥

अश्रुपूर्णेक्षणां हृद्यां संस्मरन्तीमनिन्दिताम्।
राममिन्दीवरश्यामं लक्ष्मणं चात्मसंस्थितम्॥ ३९॥

ऐसा जानकर बलवान् प्रभु रामने जनकके घर जाकर उस धनुषको उठाकर खेल-खेलमें ही तोड़ डाला। तदनन्तर परम धर्मात्मा रामने उस कन्याका उसी प्रकार पाणिग्रहण किया, जैसे शंकरने पार्वतीका और कार्तिकेयने सेना (देवसेना)-का पाणिग्रहण किया॥ २४-२५॥

तदनन्तर बहुत दिन बीत जानेपर राजा दशरथने स्वयं अपने बड़े पुत्र वीर रामको युवराज बनानेका कार्य आरम्भ किया। तब उनकी सौभाग्यशालिनी मधुरभाषिणी कैकेयी नामक पत्नीने भ्रान्तमन होकर पतिको (रामके राज्याभिषेकसे) रोका और कहा कि मेरे वीर पुत्र भरतको राजा बनायें, क्योंकि आपने पहले मुझे वर दे रखा है॥ २६—२८॥

उसका वचन सुनकर उस राजाने अत्यन्त दुःखित-मनसे कहा—'अच्छा, ऐसा ही हो'। तब धर्मको जाननेवाले आत्मवान् अच्युत राम भी पिताके चरणोंमें प्रणामकर (वनवासकी) प्रतिज्ञा कर लक्ष्मणके साथ सपत्नीक वनको चले गये। बुद्धिमान् तथा महाबलवान् प्रभु (श्रीराम) भी चौदह वर्षतक लक्ष्मणके साथ वहाँ (वनमें) रहे। वनमें निवास करते समय कभी रावण नामका राक्षस संन्यासीका वेष धारणकर सीताका हरण कर लिया और उन्हें अपनी पुरी (लंका)-में ले गया॥ २९—३२॥

शत्रुनाशक राम और लक्ष्मण सीताको न देखकर दुःख एवं शोकसे अत्यन्त संतप्त हो गये और उनकी इन्द्रियाँ व्याकुल हो गयीं॥ ३३॥

द्विजोत्तमो! यथासमय अक्लिष्टकर्मा रामकी कपि सुग्रीव तथा वानरोंसे मित्रता हो गयी। वायुपुत्र महातेजस्वी वीर हनुमान् नामक वानर सुग्रीवके अनुगामी और सदा रामके प्रिय थे। वे परम धैर्य धारणकर 'उन सीताको लाऊँगा' इस प्रकार रामसे प्रतिज्ञापूर्वक कहकर सीताको देखनेके लिये तत्पर हो गये तथा सागरपर्यन्त सारी पृथ्वीपर विचरण करने लगे। (इस प्रकार सीताको ढूँढ़ते-ढूँढ़ते) सागरमें बसी हुई रावणकी पुरी लंकामें गये। वहाँ उन्होंने राक्षसियोंसे घिरी हुई पवित्र, अश्रुपूर्ण आँखोंवाली, अनिन्दित, रमणीय तथा पवित्र सीताको निर्जन देशमें एक वृक्षके नीचे स्थित देखा। वहाँ भगवती सीता नीलकमलके समान श्यामवर्णवाले राम तथा आत्मसंयमी लक्ष्मणका स्मरण कर रही थीं॥ ३४—३९॥

निवेदयित्वा चात्मानं सीतायै रहसि स्वयम्।
असंशयाय प्रददावस्यै रामाङ्गुलीयकम्॥ ४०॥

एकान्तमें सीताको स्वयं अपना परिचय देकर उनका संदेह मिटानेके लिये उन्होंने (श्रीहनुमान्ने) रामकी अंगूठी उन्हें प्रदान की॥ ४०॥

दृष्ट्वाङ्गुलीयकं सीता पत्युः परमशोभनम्।
मेने समागतं रामं प्रीतिविस्फारितेक्षणा॥ ४१॥

समाश्वास्य तदा सीतां दृष्ट्वा रामस्य चान्तिकम्।
नयिष्ये त्वां महाबाहुरुक्त्वा रामं ययौ पुनः॥ ४२॥

निवेदयित्वा रामाय सीतादर्शनमात्मवान्।
तस्थौ रामेण पुरतो लक्ष्मणेन च पूजितः॥ ४३॥

पतिकी परम सुन्दर अँगूठीको देखकर प्रीतिके कारण विस्फारित नेत्रोंवाली सीताने रामको (ही) आया हुआ माना। तब सीताको देखकर उन्होंने आश्वासन दिया और कहा—'मैं आपको रामके पास ले चलूँगा।' ऐसा कहकर महाबाहु (हनुमान्) पुनः रामके पास चले आये। आत्मवान् (हनुमान्) रामसे सीता-दर्शनकी बात बताकर सामने खड़े हो गये। राम-लक्ष्मणने उनको साधुवादसे सत्कृत किया॥ ४१—४३॥

ततः स रामो बलवान् सार्धं हनुमता स्वयम्।
लक्ष्मणेन च युद्धाय बुद्धिं चक्रे हि रक्षसाम्॥ ४४॥
कृत्वाथ वानरशतैर्लङ्कामार्गं महोदधेः।

सेतुं परमधर्मात्मा रावणं हतवान् प्रभुः॥ ४५॥

सपत्नीकं च ससुतं सभ्रातृकमरिंदमः।
आनयामास तां सीतां वायुपुत्रसहायवान्॥ ४६॥

तदनन्तर बलवान् रामने हनुमान् तथा लक्ष्मणके साथ राक्षसोंसे स्वयं युद्ध करनेका निश्चय किया। और सैकड़ों वानरोंद्वारा महासमुद्रमें लंका जानेके लिये मार्गके रूपमें पुलका निर्माण किया गया तथा उसी पुलके सहारे महासमुद्रको पारकर शत्रुहन्ता परम धर्मात्मा प्रभु (श्रीराम)-ने वायुपुत्र हनुमान्की सहायतासे पत्नियों, पुत्रों तथा भाइयोंसहित रावणको मार डाला और भगवती सीताको वापस ले आये॥ ४४—४६॥

सेतुमध्ये महादेवमीशानं कृत्तिवाससम्।
स्थापयामास लिङ्गस्थं पूजयामास राघवः॥ ४७॥
तस्य देवो महादेवः पार्वत्या सह शंकरः।
प्रत्यक्षमेव भगवान् दत्तवान् वरमुत्तमम्॥ ४८॥

यत् त्वया स्थापितं लिङ्गं द्रक्ष्यन्तीह द्विजातयः।
महापातकसंयुक्तास्तेषां पापं विनश्यतु॥ ४९॥

अन्यानि चैव पापानि स्नातस्यात्र महोदधौ।
दर्शनादेव लिङ्गस्य नाशं यान्ति न संशयः॥ ५०॥

यावत् स्थास्यन्ति गिरयो यावदेषा च मेदिनी।
यावत् सेतुश्च तावच्च स्थास्याम्यत्र तिरोहितः॥ ५१॥

स्नानं दानं जपः श्राद्धं भविष्यत्यक्षयं कृतम्।
स्मरणादेव लिङ्गस्य दिनपापं प्रणश्यति॥ ५२॥

राघवने सेतुके मध्यमें चर्माम्बर धारण करनेवाले महादेव ईशानकी लिङ्गरूपमें प्रतिष्ठाकर उनकी पूजा की। (इस रामेश्वर-प्रतिष्ठाके समय) पार्वतीसहित महादेव भगवान् शंकरदेवने प्रत्यक्ष रूपमें श्रेष्ठ वर प्रदान करते हुए श्रीरामसे कहा—'जो द्विजाति तुम्हारे द्वारा स्थापित इस (रामेश्वर) लिंगका दर्शन करेंगे उनके बड़े-से-बड़े पाप नष्ट हो जायँगे। महासमुद्रमें स्नान करनेवालेके अन्य जो भी पाप (अर्थात् उपपातक आदि) हैं वे इस लिंगके दर्शनमात्रसे ही नष्ट हो जायँगे, इसमें संदेह नहीं है। जबतक पर्वत स्थित रहेंगे, जबतक यह पृथ्वी रहेगी और जबतक यह सेतु रहेगा, तबतक मैं गुप्तरूपसे यहाँ प्रतिष्ठित रहूँगा। यहाँ किया गया स्नान, दान, जप तथा श्राद्ध अक्षय होगा। इस (रामेश्वर) लिंगके स्मरण करने मात्रसे ही दिनभरका पाप नष्ट हो जायगा॥ ४७—५२॥

इत्युक्त्वा भगवाञ्छम्भुः परिष्वज्य तु राघवम्।
सनन्दी सगणो रुद्रस्तत्रैवान्तरधीयत॥ ५३॥

रामोऽपि पालयामास राज्यं धर्मपरायणः।
अभिषिक्तो महातेजा भरतेन महाबलः॥ ५४॥

ऐसा कहकर भगवान् शम्भुने रघुवंशी रामका आलिंगन किया और नन्दी तथा अपने गणोंके साथ वे रुद्र (शम्भु) वहीं अन्तर्धान हो गये। भरतके द्वारा अभिषिक्त होकर महाबली, महातेजस्वी तथा धर्मपरायण रामने भी राज्यका पालन किया॥ ५३-५४॥

विशेषाद् ब्राह्मणान् सर्वान् पूजयामास चेश्वरम्।
यज्ञेन यज्ञहन्तारमश्वमेधेन शंकरम्॥ ५५॥

विशेष रूपसे उन्होंने सभी ब्राह्मणोंकी पूजा की और अश्वमेध यज्ञके द्वारा यज्ञहन्ता* ईश्वर शंकरकी अर्चना की॥ ५५॥

रामस्य तनयो जज्ञे कुश इत्यभिविश्रुतः।
लवश्च सुमहाभागः सर्वतत्त्वार्थवित् सुधीः॥ ५६॥

अतिथिस्तु कुशाज्जज्ञे निषधस्तत्सुतोऽभवत्।
नलस्तु निषधस्याभून्नभस्तस्मादजायत॥ ५७॥

नभसः पुण्डरीकाख्यः क्षेमधन्वा च तत्सुतः।
तस्य पुत्रोऽभवद् वीरो देवानीकः प्रतापवान्॥ ५८॥

अहीनगुस्तस्य सुतो सहस्वांस्तत्सुतोऽभवत्।
तस्माच्चन्द्रावलोकस्तु तारापीडस्तु तत्सुतः॥ ५९॥

तारापीडाच्चन्द्रगिरिर्भानुवित्तस्ततोऽभवत्।
श्रुतायुरभवत् तस्मादेते इक्ष्वाकुवंशजाः।
सर्वे प्राधान्यतः प्रोक्ताः समासेन द्विजोत्तमाः॥ ६०॥

रामके 'कुश' नामसे विख्यात तथा सुन्दर महान् भाग्यशाली, सभी तत्त्वार्थोंको जाननेवाले बुद्धिमान् 'लव' नामसे विख्यात दो पुत्र हुए। कुशसे अतिथि उत्पन्न हुआ और उसका पुत्र निषध हुआ। निषधका पुत्र नल और उसका पुत्र नभस हुआ। नभससे पुण्डरीक नामवाला पुत्र हुआ और क्षेमधन्वा उसका पुत्र था। उस क्षेमधन्वाका देवानीक नामक वीर एवं प्रतापी पुत्र हुआ। उस (देवानीक)-का पुत्र अहीनगु और उसका पुत्र सहस्वान् हुआ। उससे चन्द्रावलोक तथा उसका पुत्र तारापीड हुआ। तारापीडसे चन्द्रगिरि तथा चन्द्रगिरिका भानुवित्त हुआ। उस (भानुवित्त)-से श्रुतायु नामक पुत्र हुआ। ये सभी इक्ष्वाकुके वंशज हैं। द्विजोत्तमो! संक्षेपमें इनमें प्रधान-प्रधान (राजाओं)-को बताया गया है॥ ५६—६०॥

य इमं शृणुयान्नित्यमिक्ष्वाकोर्वंशमुत्तमम्।
सर्वपापविनिर्मुक्तो स्वर्गलोके महीयते॥ ६१॥

जो इस श्रेष्ठ इक्ष्वाकुवंशके वर्णनको सुनेगा, वह सभी पापोंसे निर्मुक्त होकर स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होगा॥ ६१॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्र्यां संहितायां पूर्वविभागे विंशोऽध्यायः॥ २०॥

इस प्रकार छः हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके पूर्वविभागमें बीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ २०॥

इक्कीसवाँ अध्याय

चन्द्रवंशके राजाओंका वृत्तान्त, यदुवंश-वर्णनमें कार्तवीर्यार्जुनके पाँच पुत्रोंका आख्यान, परम विष्णुभक्त राजा जयध्वजकी कथा, विदेह दानवका पराक्रम तथा जयध्वजद्वारा विष्णुके अनुग्रहसे उसका वध, विश्वामित्रद्वारा विष्णुकी आराधनाका जयध्वजको उपदेश करना और जयध्वजको विष्णुका दर्शन

रोमहर्षण उवाच

ऐलः पुरूरवाश्चाथ राजा राज्यमपालयत्।
तस्य पुत्रा बभूवुर्हि षडिन्द्रसमतेजसः॥ १॥
आयुर्मायुरमावायुर्विश्वायुश्चैव वीर्यवान्।
शतायुश्च श्रुतायुश्च दिव्याश्चैवोर्वशीसुताः॥ २॥

रोमहर्षणने कहा—इलाका पुत्र राजा पुरूरवा राज्यका पालन करने लगा। उसको इन्द्रके समान तेजस्वी आयु, मायु, अमावायु, वीर्यवान् विश्वायु, शतायु तथा श्रुतायु नामवाले छः पुत्र हुए। ये उर्वशीके दिव्य पुत्र थे॥ १-२॥

आयुषस्तनया वीराः पञ्चैवासन् महौजसः।
स्वर्भानुतनयायां वै प्रभायामिति नः श्रुतम्॥ ३॥
नहुषः प्रथमस्तेषां धर्मज्ञो लोकविश्रुतः।
नहुषस्य तु दायादाः षडिन्द्रोपमतेजसः॥ ४॥

हमने सुना है कि आयुको स्वर्भानु (राहु)-की कन्या प्रभासे पाँच महान् ओजस्वी पुत्र हुए थे। उनमें नहुष प्रथम (पुत्र) था, जो धर्मज्ञ और लोकमें विख्यात था।

---

* भगवान् शंकरने दक्षके यज्ञका विध्वंस कराया था इसलिये उनको यज्ञहन्ता कहा जाता है।

लघु उपाख्यान
पतिव्रता माता सीता
एवं माया सीता
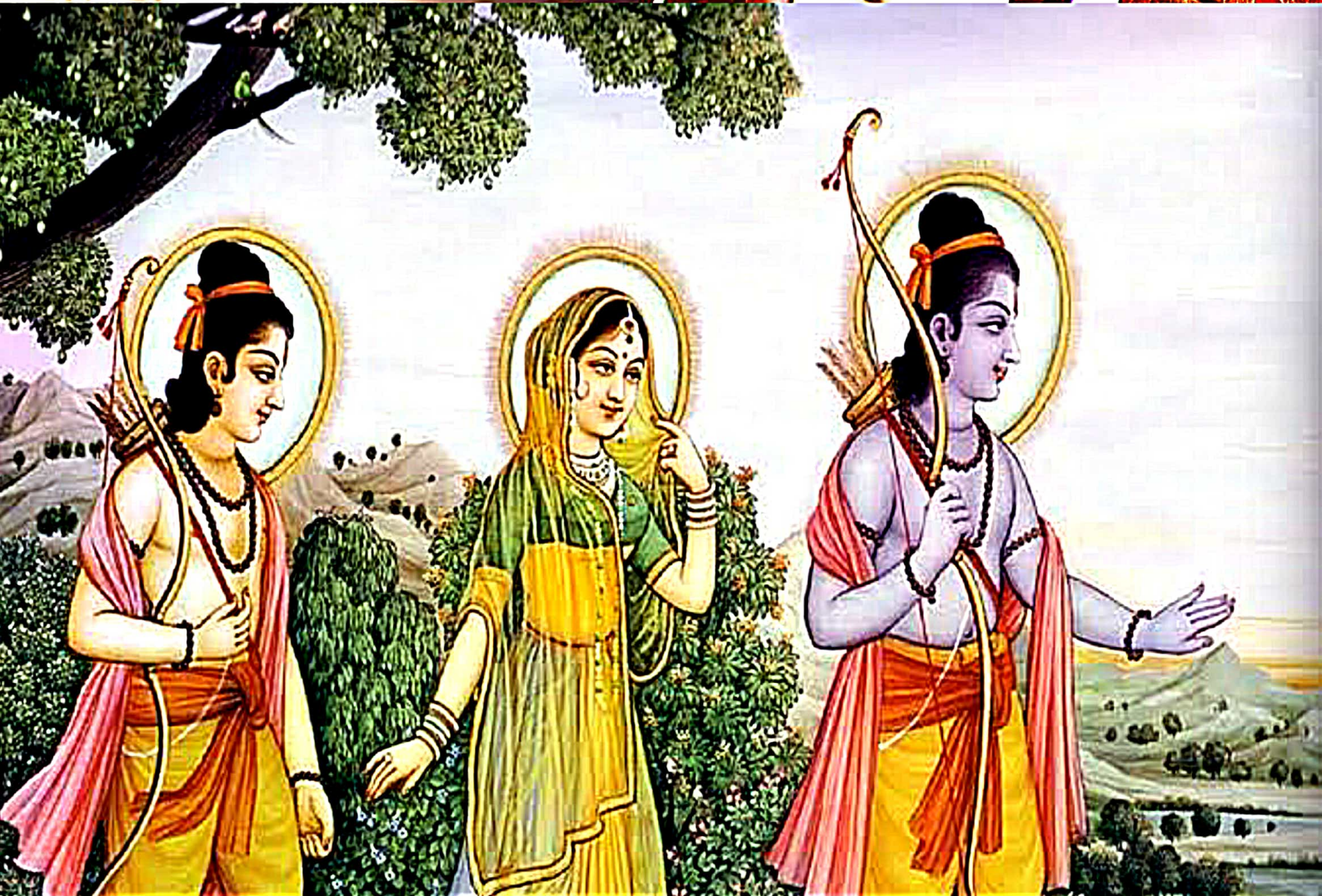
पतिव्रता तु या नारी भर्तृशुश्रूषणोत्सुका।
न तस्या विद्यते पापमिह लोके परत्र च॥ ११०॥

जो नारी पतिव्रता है और पतिकी सेवा-शुश्रूषामें अनुरक्त है, उसके लिये न तो इस लोकमें कोई पाप है और न परलोकमें॥ ११०॥

पतिव्रता धर्मरता रुद्राण्येव न संशयः।
नास्याः पराभवं कर्तुं शक्नोतीह जनः क्वचित्॥ १११॥

यथा रामस्य सुभगा सीता त्रैलोक्यविश्रुता।
पत्नी दाशरथेर्देवी विजिग्ये राक्षसेश्वरम्॥ ११२॥

रामस्य भार्यां विमलां रावणो राक्षसेश्वरः।
सीतां विशालनयनां चकमे कालचोदितः॥ ११३॥

गृहीत्वा मायया वेषं चरन्तीं विजने वने।
समाहर्तुं मतिं चक्रे तापसः किल कामिनीम्॥ ११४॥

विज्ञाय सा च तद्भावं स्मृत्वा दाशरथिं पतिम्।
जगाम शरणं वह्निमावसथ्यं शुचिस्मिता॥ ११५॥

(पातिव्रत) धर्मपरायण पतिव्रता (स्त्री) रुद्राणी ही होती है, इसमें संदेह नहीं। इस संसारमें कोई भी मनुष्य इसे कभी भी पराजित करनेमें समर्थ नहीं है। उदाहरणके लिये दशरथके पुत्र रामकी तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध सुन्दर पत्नी देवी सीताने राक्षसेश्वर (रावण)-को पराजित कर दिया था। कालसे प्रेरित राक्षसराज रावणने रामकी सुन्दर तथा विशाल नेत्रोंवाली भार्या सीताको प्राप्त करनेकी इच्छा की। उसने मायासे तपस्वीका वेष धारणकर जनशून्य वनमें विचरण (निवास) करती हुई कामिनी (सीता)-का अपहरण करनेका विचार किया। तब पतिव्रता भगवती सीताने रावणके दुष्ट भावको समझकर अपने पति दशरथ-पुत्र रामका स्मरण किया और पवित्र मुसकानवाली उन सीतादेवीने आवसथ्य अग्निकी शरण ग्रहण की॥ १११—११५॥

उपतस्थे महायोगं सर्वदोषविनाशनम्।
कृताञ्जली रामपत्नी साक्षात् पतिमिवाच्युतम्॥ ११६॥

नमस्यामि महायोगं कृतान्तं गहनं परम्।
दाहकं सर्वभूतानामीशानं कालरूपिणम्॥ ११७॥

नमस्ये पावकं देवं साक्षिणं विश्वतोमुखम्।
आत्मानं दीप्तवपुषं सर्वभूतहृदि स्थितम्॥ ११८॥

प्रपद्ये शरणं वह्निं ब्रह्मण्यं ब्रह्मरूपिणम्।
भूतेशं कृत्तिवसनं शरण्यं परमं पदम्॥ ११९॥

ॐ प्रपद्ये जगन्मूर्तिं प्रभवं सर्वतेजसाम्।
महायोगेश्वरं वह्निमादित्यं परमेष्ठिनम्॥ १२०॥

रामकी पत्नी (सीतादेवी) हाथ जोड़कर साक्षात् पतिके समान सभी दोषोंको नष्ट करनेवाले महायोगरूप अच्युत (अग्नि)-की शरणमें गयीं (और उनकी स्तुति करने लगीं—) महायोगस्वरूप, परम गहन (रहस्यस्वरूप), कृतान्त, दहन करनेवाले, सभी प्राणियोंके नियामक कालरूपी अग्निको मैं नमस्कार करती हूँ। मैं सभी ओर मुखवाले, सभी प्राणियोंके हृदयमें स्थित, दीप्त शरीरवाले, आत्मरूप तथा साक्षीदेव पावक (अग्नि)-को नमस्कार करती हूँ। मैं ब्राह्मणोंके उपकारक, ब्रह्मरूपी, कृत्तिवासा,* शरणागतवत्सल, परमपदरूप भूतेश वह्निकी शरण ग्रहण करती हूँ। मैं जगन्मूर्ति, सभी तेजोंके उद्भव-स्थान, महायोगेश्वर, परमेष्ठी, आदित्य और ओंकाररूप वह्निदेवकी शरण ग्रहण करती हूँ॥ ११६—१२०॥

प्रपद्ये शरणं रुद्रं महाग्रासं त्रिशूलिनम्।
कालाग्निं योगिनामीशं भोगमोक्षफलप्रदम्॥ १२१॥

प्रपद्ये त्वां विरूपाक्षं भुर्भुवःस्वःस्वरूपिणम्।
हिरण्मये गृहे गुप्तं महान्तममितौजसम्॥ १२२॥

मैं महाग्रास, त्रिशूली, भोग एवं मोक्षरूप फलोंके प्रदाता, योगियोंके ईश और रुद्रस्वरूप कालाग्निकी शरण ग्रहण करती हूँ। मैं भूर्भुवः तथा स्वःस्वरूप, हिरण्मयगृहमें सुगुप्त, विरूपाक्ष तथा अमित तेजस्वी आप महान्‌की शरण ग्रहण करती हूँ॥ १२१-१२२॥

* 'कृत्ति' मृग आदिके चर्मको कहते हैं। अग्नि रुद्रके अंश हैं और रुद्र कृत्तिवासा हैं, इसलिये अग्निको भी कृत्तिवासा कहते हैं।

वैश्वानरं प्रपद्येऽहं सर्वभूतेष्ववस्थितम्।
हव्यकव्यवहं देवं प्रपद्ये वह्निमीश्वरम्॥ १२३॥

प्रपद्ये तत्परं तत्त्वं वरेण्यं सवितुः स्वयम्।
भर्गमग्निपरं ज्योती रक्ष मां हव्यवाहन॥ १२४॥

सभी प्राणियोंमें अवस्थित वैश्वानरकी मैं शरण ग्रहण करती हूँ। मैं हव्य तथा कव्यको वहन करनेवाले ईश्वर वह्निदेवकी शरणमें हूँ। मैं उस पर-तत्त्व, वरणीय, साक्षात् सविता और तेजोरूप परम ज्योति अग्निकी शरण ग्रहण करती हूँ। हव्यवाहन! आप मेरी रक्षा करें॥ १२३-१२४॥

इति वह्न्यष्टकं जप्त्वा रामपत्नी यशस्विनी।
ध्यायन्ती मनसा तस्थौ राममुन्मीलितेक्षणा॥ १२५॥

इस वह्न्यष्टकका जप करके यशस्विनी उन्मीलित नेत्रोंवाली रामकी पत्नी सीता मनसे रामका ध्यान करती हुई स्थित हो गयीं॥ १२५॥

अथावसथ्याद् भगवान् हव्यवाहो महेश्वरः।
आविरासीत् सुदीप्तात्मा तेजसा प्रवहन्निव॥ १२६॥

सृष्ट्वा मायामयीं सीतां स रावणवधेप्सया।
सीतामादाय धर्मिष्ठां पावकोऽन्तरधीयत॥ १२७॥

तां दृष्ट्वा तादृशीं सीतां रावणो राक्षसेश्वरः।
समादाय ययौ लङ्कां सागरान्तरसंस्थिताम्॥ १२८॥

कृत्वाथ रावणवधं रामो लक्ष्मणसंयुतः।
समादायाभवत् सीतां शङ्काकुलितमानसः॥ १२९॥

सा प्रत्ययाय भूतानां सीता मायामयी पुनः।
विवेश पावकं दीप्तं ददाह ज्वलनोऽपि ताम्॥ १३०॥

स्तुति करनेके अनन्तर उस आवसथ्य अग्निसे अत्यन्त उद्दीप्त स्वरूपवाले (दुष्ट भाववाले रावणपर क्रुद्ध होनेके कारण) तेजसे जलते हुएके समान भगवान् महेश्वर हव्यवाह प्रकट हो गये। रावणके वधकी इच्छासे मायामयी सीताको उत्पन्नकर वे पावक (अग्निदेव) धर्ममयी सीताको लेकर अन्तर्हित हो गये। धर्ममयी सीता-जैसी ही उस मायामयी सीताको देखकर राक्षसराज रावण उसे ही लेकर सागरके मध्यमें स्थित लंकाको चला गया। रावणका वध करके (भगवती) सीताको प्राप्तकर लक्ष्मणसहित रामका मन शंकायुक्त हो गया। जनसामान्यको विश्वास दिलानेके लिये वह मायासे निर्मित सीता उद्दीप्त अग्निमें प्रविष्ट हो गयीं और अग्निने उन्हें अपनेमें मिला लिया॥ १२६—१३०॥

दग्ध्वा मायामयीं सीतां भगवानुग्रदीधितिः।
रामायादर्शयत् सीतां पावकोऽभूत् सुरप्रियः॥ १३१॥

प्रगृह्य भर्तुश्चरणौ कराभ्यां सा सुमध्यमा।
चकार प्रणतिं भूमौ रामाय जनकात्मजा॥ १३२॥

मायामयी सीताको अपनेमें लीन कर लेनेके पश्चात् उग्र किरणोंवाले भगवान् पावक (अग्नि)-ने रामको (वास्तविक) सीताका दर्शन कराया। इससे 'पावक' देवताओंके प्रिय बन गये। सुन्दर मध्य-भागवाली उन जनककी पुत्रीने अपने दोनों हाथोंसे अपने स्वामी रामके दोनों चरणोंको पकड़कर भूमिपर प्रणाम किया॥ १३१-१३२॥

दृष्ट्वा हृष्टमना रामो विस्मयाकुललोचनः।
ननाम वह्निं शिरसा तोषयामास राघवः॥ १३३॥

उवाच वह्नेर्भगवान् किमेषा वरवर्णिनी।
दग्धा भगवता पूर्वं दृष्टा मत्पार्श्वमागता॥ १३४॥

तमाह देवो लोकानां दाहको हव्यवाहनः।
यथावृत्तं दाशरथिं भूतानामेव संनिधौ॥ १३५॥

(सीताको) देखकर आश्चर्यचकित नेत्रोंवाले रघुवंशी रामने प्रसन्नमन हो सिरसे प्रणामकर अग्निको संतुष्ट किया। भगवान् (राम)-ने वह्निसे कहा—मेरे समीपमें आयी यह दिव्यगुणोंवाली सीता किस प्रकार पहले आपद्वारा अपनेमें लीन की जाती हुई देखी गयी। लोकोंको अपनेमें पचा लेनेवाले तथा हव्यको वहन करनेवाले अग्निने उन दशरथपुत्र रामसे सभी लोगोंकी संनिधिमें ही वह सब बताया जो पूर्वमें घटित हुआ था॥ १३३—१३५॥

इयं सा मिथिलेशेन पार्वतीं रुद्रवल्लभाम्।
आराध्य लब्धा तपसा देव्याश्चात्यन्तवल्लभा॥ १३६॥

भर्तुः शुश्रूषणोपेता सुशीलेयं पतिव्रता।
भवानीपार्श्वमानीता मया रावणकामिता॥ १३७॥

या नीता राक्षसेशेन सीता भगवताहृता।
मया मायामयी सृष्टा रावणस्य वधाय सा॥ १३८॥

तदर्थं भवता दुष्टो रावणो राक्षसेश्वरः।
मयोपसंहृता चैव हतो लोकविनाशनः॥ १३९॥

गृहाण विमलामेनां जानकीं वचनान्मम।
पश्य नारायणं देवं स्वात्मानं प्रभवाव्ययम्॥ १४०॥

मिथिलानरेश जनकने तपद्वारा रुद्रप्रिया पार्वतीकी आराधनाकर देवीकी अत्यन्त प्रिय जिन सीताको पुत्रीरूपमें प्राप्त किया था, उन पतिसेवापरायणा, सुन्दर शीलवाली पतिव्रताको रावण चाह रहा है, जब मैंने यह जाना तब उन्हें (भगवती सीताको) मैं पार्वतीके पास ले आया और राक्षसराज रावणद्वारा ले जायी गयी जिन सीताको आपने प्राप्त किया उन्हें मैंने रावणके वधके लिये मायासे निर्मित किया था, उन्हींके लिये आपने लोकोंका विनाश करनेवाले दुष्ट राक्षसराज रावणको मारा तथा मैंने उन्हीं मायामयी सीताको उपसंहृत (अपनेमें लीन)-कर लिया है। मेरे कहनेसे आप इन विशुद्ध जानकीको ग्रहण करें और अपने-आपको प्रभव, अव्यय, नारायणदेवके रूपमें देखें॥ १३६—१४०॥

इत्युक्त्वा भगवांश्चण्डो विश्वार्चिर्विश्वतोमुखः।
मानितो राघवेणाग्निर्भूतैश्चान्तरधीयत॥ १४१॥

एतत् पतिव्रतानां वै माहात्म्यं कथितं मया।
स्त्रीणां सर्वाघशमनं प्रायश्चित्तमिदं स्मृतम्॥ १४२॥

अशेषपापयुक्तस्तु पुरुषोऽपि सुसंयतः।
स्वदेहं पुण्यतीर्थेषु त्यक्त्वा मुच्येत किल्बिषात्॥ १४३॥

पृथिव्यां सर्वतीर्थेषु स्नात्वा पुण्येषु वा द्विजः।
मुच्यते पातकैः सर्वैः समस्तैरपि पूरुषः॥ १४४॥

ऐसा कहकर सभी ओर शिखा (ज्वाला) तथा सभी ओर मुखवाले भगवान् प्रचण्ड (अमित तेजोरूप) अग्निदेव राघव (राम) तथा अन्य लोगोंद्वारा सम्मानित होकर अन्तर्धान हो गये। यह मैंने आप लोगोंको पतिव्रताओंका माहात्म्य बताया। इसे स्त्रियोंके समस्त पापोंको नष्ट करनेवाला प्रायश्चित्त कहा गया है। सम्पूर्ण पापोंसे युक्त पुरुष भी भलीभाँति संयत होकर पुण्य-तीर्थोंमें अपना शरीर त्याग करके पापसे मुक्त हो जाता है। अथवा पृथ्वीके सभी पुण्य तीर्थोंमें स्नान करनेसे द्विज पुरुष समस्त सञ्चित पापोंसे मुक्त हो जाता है॥ १४१—१४४॥

व्यास उवाच

इत्येष मानवो धर्मो युष्माकं कथितो मया।
महेशाराधनार्थाय ज्ञानयोगं च शाश्वतम्॥ १४५॥

योऽनेन विधिना युक्तं ज्ञानयोगं समाचरेत्।
स पश्यति महादेवं नान्यः कल्पशतैरपि॥ १४६॥

स्थापयेद् यः परं धर्मं ज्ञानं तत्पारमेश्वरम्।
न तस्मादधिको लोके स योगी परमो मतः॥ १४७॥

यः संस्थापयितुं शक्तो न कुर्यान्मोहितो जनः।
स योगयुक्तोऽपि मुनिर्नात्यर्थं भगवत्प्रियः॥ १४८॥

तस्मात् सदैव दातव्यं ब्राह्मणेषु विशेषतः।
धर्मयुक्तेषु शान्तेषु श्रद्धया चान्वितेषु वै॥ १४९॥

व्यासजीने कहा—इस प्रकार आप लोगोंसे मैंने इस मानवधर्मका और महेश्वरकी आराधनाके लिये सनातन ज्ञानयोगका वर्णन किया। जो इस विधिसे युक्त होकर ज्ञानयोगका पालन करता है, वह महादेवका दर्शन करता है। दूसरा व्यक्ति सैकड़ों कल्पोंमें भी उनका दर्शन नहीं कर सकता। जो इस परम धर्म और परमेश्वर-सम्बन्धी ज्ञानकी स्थापना (अधिकारी लोगोंमें प्रतिष्ठा) करता है, संसारमें उससे बढ़कर और कोई नहीं है, उसे श्रेष्ठ योगी माना गया है। इसकी स्थापना करनेमें समर्थ होनेपर भी जो व्यक्ति मोहवश धर्म एवं ज्ञानकी स्थापना नहीं करता, वह योगसम्पन्न मुनि होनेपर भी भगवान्‌का अत्यन्त प्रिय नहीं होता। इसलिये सदा ही विशेष-रूपसे धर्मयुक्त शान्त और श्रद्धासम्पन्न ब्राह्मणोंको इसका उपदेश करना चाहिये॥ १४५—१४९॥